राजा दिलीप एवं महारानी सुदक्षिणा द्वारा गोचारण-व्रत (नन्दिनी की परिचर्चा) का वर्णन करें।

उत्तर– महाकवि कालिदास की समस्त काव्य कृतियों में ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण संस्कृत-साहित्य में 'रघुवंश' एक उत्कृष्ट महाकाव्य है। काव्य-कला की दृष्टि से भी यह निर्विवाद रूप से अभिनन्दनीय कृति है एवं आदि से अन्त तक इसमें एक निपुण कवि का विलक्षण कौशल झलकता है। दिलीप एवं सुदक्षिणा के तपोमय जीवन से इस काव्य का आरम्भ होता है। फिर, धीरे-धीरे महान् रघुवंशी राजाओं की वीरता व दान्यता, त्याग और तपस्या की कहानी उद्घाटित होती हैं और अंत में कामुक अग्निवर्ण की विलासिता और उसके दयनीय अवसान से काव्य की समाप्ति होती है। ..... वाल्मीकि के महिमाशाली राम को कालिदास ने तेजस्विता और गरिमा प्रदान की है। वर्णनों की सजीवता, प्रसंङ्गों की स्वभाविकता, शैली की मधुरता तथा भावभाषा की अनुरूपता में 'रघुवंश' संस्कृत महाकाव्यों में अनुपम है। उन्नीस सर्गों में उपनिबद्ध महाकाव्य के द्वितीय सर्ग में सुदक्षिणा तथा दिलीप की गो-चारण सेवा-व्रत का अत्यन्त मनोहारी चित्रण किया गया है। वस्तुतः इसमें दिलीप एवं सुदक्षिणा के महान् त्याग एवं तपस्या का वर्णन किया गया है। यहाँ पुत्र कामना से महाराज दिलीप महर्षि वशिष्ठ के आश्रम में सपत्नीक निवास करके सेवकादि बिना ही गुरू की आज्ञा से उनकी गौ नन्दिनी की सेवा-व्रत का अभ्यास कर रहे हैं। इस गो चारण-व्रत का द्वितीय सर्ग में निम्न प्रकार से चित्रण है–

प्रतिदिन प्रातःकाल महाराज दिलीप ने नन्दिनी के छोटे बछड़े को दूध पिलाकर बान्ध कर नन्दिनी को चराने के लिए खोला। सुदक्षिणा ने भी गंध पुष्प से उसकी पूजा की। वह पतिव्रता

सुदक्षिणा गाय के पीछे कुछ दूर तक गयी। उदार वेत्ता दिलीप पत्नी को विदा करके नन्दिनी की रक्षा में उसी प्रकार तत्पर हो गये, जैसे राज्य की रक्षा में तत्पर रहते थे। उन्होंने संवकों को भी लौटा दिया। गुरू के निर्देशानुसार राजा नन्दिनी की सेवा में तत्पर रहते। वे डाँस, मच्छड़ों को उड़ाते, खुजलाते, हरे-हरे स्वादिष्ट घासों को खिलाते तथा स्वतंत्र रूप से नन्दिनी को घूमने देते। वे नन्दिनी की सेवा छाया की तरह करते थे। गौ के रूकने पर वह रूक जाते, चलने पर चलते, बैठने पर बैठते एवं जल ग्रहण करने पर वे भी जल ग्रहण करते—

"स्थितः स्थितामुच्चलितः प्रयाता, निषे दुर्षमासन बन्धधीरः।
जलाभि लाषी जलमाददानां, छायेव तां मूयतिरन्वगच्छत्।।"

सुदक्षिणां आते ही अक्षत, पात्रादि लेकर गौ की परिक्रमा तथा प्रणामादि के अनन्तर नन्दिनी के मस्तक की पूजा, कार्य-सिद्धि-द्वार की भाँति करतीं। राजा सपत्नीक गुरु चारणों की प्रणाम था सन्ध्यावन्दन करके नन्दिनी को दूहकर उसकी सेवा में पुनः लग जाते। पुनः गौ के समीप दीपक जला, भोज्य-सामग्री रख सपत्नीक उसी के पास कुछ देर बैठते, फिर उसके सो जाने पर सो जाते। इस प्रकार, नियमित रूप से असीम श्रद्धा से समन्वित राजा-रानी अहर्निश इक्कीस दिनों तक नन्दिनी की सेवा करते रहे। 22वें दिन सेवापरायण दिलीप की भक्ति-भावना की परीक्षा का दिन उपस्थित हुआ।

नन्दिनी ने राजा की परीक्षा हेतु माया रची। एक सिंह हिमालय की गुफा में नन्दिनी पर आक्रमण करता है। उनपर दिलीप के अस्त्र नाकाम सिद्ध हुए। राजा को अत्यन्त दुःखी एवं क्रुद्ध देखकर सिंह ने कहा- हे राजन्! मैं शिव का सेवक हूँ, मुझपर आपके वाण कार्य नहीं करेंगे। अतः आप लौट जायें।'' यह सुनकर राजा ने बड़े प्रयत्नपूर्वक सिंह को अपना शरीर नन्दिनी के बदले में समर्पित कर दिया। यद्यपि सिंह पहले तैयार नहीं हुआ, लेकिन अनेक तर्क-वितर्कों के अनन्तर राजा के शरीर-भक्षण एवं नन्दिनी को छोड़ने के लिए सिंह तैयार हुआ। राजा का शरीर सिंह के निकट समर्पित था, लेकिन सिंह ने आक्रमण नहीं किया। देवताओं ने पुष्पवृष्टि की एवं नन्दिनी मनुष्य-वाणी में इस प्रकार बोली— **''उत्तिष्ठ वत्स!''**

नन्दिनी की वाणी सुनकर उठते हुए राजा ने सामने स्वमाता की तरह नन्दिनी गौ को तो देखा, लेकिन सिंह को नहीं। विस्मित राजा से नन्दिनी ने कहा—

'हे परोपकारिन्! मैंने माया का सिंह बनाकर तुम्हारी परीक्षा ली थी। ऋषि के प्रभाव से मेरे ऊपर यमराज भी प्रहार नहीं कर सकते, हिंसक पशु की क्या बात? मैं प्रसन्न हूँ। सकल मनोरथों को पूर्ण करनेवाली मुझसे वर माँगो।'' राजा ने पुत्र की याचना की एवं गौ ने ''एवमस्तु'' कहा। तदन्तर दिलीप के साथ नन्दिनी आश्रम में आयी। राजा ने गुरू की आज्ञा से दूध दुहकर बछड़े को पिलाकर यज्ञाहुति से अवशेष दूध को साक्षात् उज्जवल यश की भाँति पान किया। दूसरे दिन सुबह, गो सेवा-व्रत के उद्यापनोपरान्त गो, गुरू एवं अग्नि की प्रदक्षिणा करके राजधानी के लिए सपत्नीक राजा ने प्रस्थान किया।

इस प्रकार, उपयुक्त गो-चारण सेवा-व्रत के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने सम्पूर्ण आश्रम हिमालय के निकटस्थ वन को तपोभूमि के रूप में तथा दिलीप एवं सुदक्षिणा को तपस्वी एवं त्यागी के रूप में चित्रित किया है। उनके काव्य की विशेषता है—तप, त्याग एवं तपोवन की त्रिवेणी का प्रवाहित होना। दिलीप तप एवं त्याग की साक्षात मूर्ति हैं। साथ ही यह भी सिद्ध किया गया है कि—

''कर्त्तव्य की शीपी में ही मनोरथ का मोती फलता है।'' इससे स्पष्ट है कि तप से कुछ भी असंभव नहीं है?